बौद्ध केन्द्र के रूप में कुशीनगर : एक समीक्षा

मनोरंजन कुमार (शोध छात्र)

इतिहास विभाग, बी0 आर0 बी0 यू0 मुज0

बौद्ध साहित्य में कुशीनगर का विशद वर्णन मिलता है। इसमें कुशीनगर के साथ कुशीनारा[1], कुशीनगरी[2], और कुशीग्राम[3] प्रभृति अन्य नामो का उल्लेख है। बुद्धपूर्व युग में यह कुशाबती के नाम से विख्यात था। बुद्ध ने कुशीनगर को प्राचीन कुशावती से अभीहित किया था। विस्तार और समृद्धि के दृष्टि से उनका कहना था कि यह राजधानी पूर्व से पश्चिम 12 योजन लम्बी एवं उत्तर से दक्षिण 7 योजन चौरी थी[4] । इसमे सात प्रकार, चार तोरण और खजुर वृक्षों का सात निकुंज थे[5]। यह नगर हीरण्यवती नदी के पश्चिम तट के समीप एक प्रमुख स्थल मार्ग पर स्थित था[6]। इसी स्थल मार्ग से बाबरी ऋषि के शिष्यों के जाने का उल्लेख है[7]। बुद्ध के मृत्यु के समय महाकश्यप भी राजगृह से कुशीनगर इसी मार्ग से गये थे[8]। कुशीनगर बहुत समृद्धशाली नगर था। स्वयं बुद्ध ने इसकी प्रसंशा की है। बुद्धघोष ने उन विशिष्ट कारणों का उल्लेख किया है, जिनसे प्रेरित होकर बुद्ध ने कुशीनगर को परिनीर्वाणार्थ चुना था –

1. महासुदस्सन सुतांत का उपदेश वहीं किया था।
2. सुभद्र की प्रवज्या वहीं संभव थी।
3. अस्थि विभाजन की समस्या हल करने वाला व्यक्ति वहाँ उपस्थित था[9]।

दिग्विजयी चक्रवर्ती सम्राट महासुदर्शन के राज्यकाल में कुशावती (कुशीनगर) 84000 नगरियों में प्रमुख थी[10]। यह समृद्ध, रमणीय, जनाकीर्ण एवं धन– धान्य संपन्न थी। यह देवताओं की राजधानी अलकमन्दा की भाँति दिन–रात दस शब्दों से गुंजायमान रहती थी[11]। लेकिन यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बुद्ध के काल में यह नगर राजगृह, वैशाली और श्रावस्ती की तरह प्रथम कोटि का नगर था[12]। अतः यह कहा जा सकता है कि इस नगर का क्रमशः ह्रास हुआ था।

बुद्ध का कुशीनगर से विशेष लगाव था। पूर्व जन्मों में भी यह नगरी उनकी क्रीड़ास्थली रह चुकी थी। एक उल्लेख के अनुसार वे सात बार चक्रवर्ती सम्राट बनकर कुशीनगर में राज्य कर चुके थे[13]। अंतिम बार जब बुद्ध यहाँ आये तो मल्लों ने उनका स्वागत किया। स्वागत–सत्कार में सम्मिलित न होनेवाले व्यक्तियों के लिए मुद्रा दण्ड का प्रावधान था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुशीनगर बुद्ध की शिक्षाओं से पूर्णरूपेण प्रभावित हुआ और वहाँ के अनेक संभ्रांत सज्जन उनके समर्थक बने। अतः ऐसे अनेक उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म का स्वयं बुद्ध के समय में ही बहुविध विकास हो चुका था और अनेक संभ्रांत व्यक्तियों ने इस धर्म की सदस्यता स्वीकार की थी।

ज्ञातव्य है कि कुशीनगर में बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था। वहाँ के मल्लों ने भगवान के अंतिम संस्कार का समुचित प्रबंध किया था। 6 दिन तक वे लोग उनके निष्प्राण शरीर का नृत्य, गीत, बाद्य एवं गंध पुष्पादि से सत्कार करते रहे। सातवें दिन वे उसे मुकुट बंधन चैत्य ले गये[14]। शालवन से चलकर वे नगर में उत्तर द्वार से प्रविष्ट हुए और पूर्व द्वार से निकलकर चैत्य स्थान पर पहुँचे। वहीं पर चक्रवर्ती राजोचित विधान के अनुसार दाह–संस्कार किया गया[15]। मुकुट बंधन चैत्य को वर्तमान रामाभार तालाब के पश्चिमी तट पर स्थित एक विशाल स्तूत के खंडहर से समीकृत किया जा सकता है, जो माथा कुँवर के कोट से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है[16]।

दाह–संस्कार के पश्चात् अस्थि–विभाजन के संदर्भ में विवाद उत्पन्न हो गया। इस अवसर पर उपस्थित लोगों में वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप के बुल, रामग्राम के कोलिय, पावा के मल्ल, मगधराज अजातशत्रु तथा वेठ–द्वीप (विष्णुद्वीप) के ब्राह्मण मुख्य थे[17]। कुशीनगर के मल्लों ने विभाजन का विरोध किया। प्रतिद्वंदी राज्यों की सेनाओं ने उसके नगर को घेर लिया। युद्ध प्रायः निश्चित था, किन्तु द्रोण ब्राह्मण के आ जाने से अस्थि अवशेषों का आठ भागों में विभाजन संभव हुआ[18]। विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि प्राप्त अवशेषों को अपनी राजधानियों में ले गये और वहाँ नवनिर्मित स्तूपों में उन्हे स्थापित किया गया। साँची के तोरण पर उत्कीर्ण चित्र इस घटना के ज्वलंत उदाहरण है[19]। इसके अतिरिक्त तोरण के मध्य भाग में नीचे की ओर नगर के परिखा तथा प्राकार का भी अंकन मिलता है। प्राकार के भीतर नगर के कुछ विशिष्ट भवन भी दृष्टिगोचर होते है[20]।

कुशीनगर के मल्लों का अपना संथागार था, जहाँ पर राजनीतिक तथा धार्मिक विषयों पर विवाद होते थे। आनन्द जिस समय तथागत की मृत्यु का समाचार लेकर कुशीनगर गये उस समय मल्ल अपनी राज्य सभा में थे। तत्पश्चात् उन्होंने अपने संथागार में ही तथागत के अंतिम संस्कार के प्रारूप पर विचार विमर्श किया था। दिर्घनिकाय के महापरिनिर्वाण सुतांत में कुशीनारा के मल्लों में पुरषि नामक एक अधिकारी वर्ग का उल्लेख मिलता है जो रीस डेविड्स के मतानुसार अधीनस्थ कर्मचारियों का एक वर्ग था[21]।

बौद्ध ग्रंथों में कुशीनगर एवं अन्य प्रमुख नगरों के बीच की दूरी उल्लिखित है जो इस नगर की स्थिति निश्चित करने में सहायक हैं कुशीनगर से पावा की दूरी तीनगव्यूत (लगभग3/4 योजन, आधुनिक 6 मील) था[22]। बुद्ध ने अपनी अंतिम यात्रा में इसी रास्ते से ककुक्षा नदी को पार किया था[23]। राजगृह से इस नगरी की दूरी 25 योजन एवं सागल (स्यालकोट) से 100 योजन थी[24]। हेल्नसांग कुशीनगर से 700 ली चलकर वाराणसी पहुँचा था[25]।

नगर की स्थिति, रक्षा एवं व्यापार की दृष्टि से सर्वथा अनुकूल थी। नगर के समीप ही उपवतन नामक शालवन था जिसके एक भाग को मल्लों ने प्रमोद उद्यान में परिणत कर दिया था। यह हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर स्थित था[26]। इस उपवतन शालवन में भी भगवान ने अंतिम निवास किया था और यही युगल साल वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। उपवतन शालवन को कनिंघम ने वर्तमान कसया के माथा कुवर कोट' से समीकृत किया है''[27]।

चीनी यात्रियों का कुशीनगर

पाँचवीं शताब्दी ई0 में जब फाह्यान ने भारत का भ्रमण किया तो कुशीनगर को उपेक्षित एवं निर्जन पाया । केवल कुछ स्थानों पर स्तूप और संघाराम बने हुए थे। सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग भारत आया तो उस समय भी यह स्थान निर्जन था। उसने यहाँ मात्र कुछ संघाराम देखे थे। इस संबंध में चीनी यात्रियों के विवरण निम्नलिखित हैं–

फाह्यान का वृत्तांत

चीनी चात्री फाह्यान 399–414 ई0 के बीच कुशीनगर आया था। उसने कुशीनगर को पिप्पलिवन के अंगार स्तूप के पूर्व में 12 योजन और वैशाली से 12 योजन की दूरी पर स्थित बतलाया। उसने सम्पूर्ण जनपद को निर्जन एवं उजाड़ पाया था। फाह्यायन ने नगर के उत्तर निरंजना नदी के किनारे शालवन के दो वृक्षों के बीच बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने के स्थान का उल्लेख किया है[28]। शालवन के विहार में उस समय भी कुछ भिक्षु निवास करते थे। फाह्यान लिखता है कि परिनिर्वाण स्तूप के अतिरिक्त वहाँ चार अन्य स्तूप थे जो क्रमशः निम्नलिखित चार स्थानों पर बने थे –

1. जहॉ सुभद्र[29] ने अर्हतत्व को प्राप्त किया था।
2. जहाँ वज्रपाणि यक्ष की गदा गिरी थी।
3. जहाँ मल्लों ने बुद्ध के निष्प्राण शरीर का सप्ताहपर्यन्त पूजन किया था।
4. जहाँ बुद्ध के अस्थि अवशेषों को विभाजित किया गया था।

फाह्यान के भारत आगमन के समय यहाँ गुपतों का साम्राज्य था। उस समय भारतवर्ष कला और संस्कृति के क्षेत्र में अपवनी पराकाष्ठा पर था। कुमारगुप्त के शासन काल में हरिबल स्वामी ने कसिया के सुविख्यात परिनिर्वाण मंदिर के निकटवर्ती स्तूप का जीर्णोद्धार किया।

फाह्यायन यहाँ से 12 योजन चलकर उस स्थान पर पहुँचा था, जहाँ से बुद्ध ने लिच्छवियों को वापस भेजा था, क्योंकि वे लोग उनके साथ परिनिर्वाण स्थल तक जाना चाहते थे। यहीं एक पत्थर की लाट (स्तम्भ) थी जिस पर उसके परिनिर्वाण की घटना का अंकन था[30]।

ह्वेनसांग का यात्रा वृत्तांत

सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग कुशीनगर आया तो उस समय इस स्थान की स्थिति अच्छी नहीं थी। यह नगर 10 ली की परिधि में फैला मात्र खंडहर सदृश रह गया था[31]। यहाँ की जनसंख्या अत्यल्प थी। नगर के उत्तर–पश्चिम चुण्ड के निवास–स्थान पर अशोक द्वारा बनवाया गया एक स्तूप था।

नगर के उत्तर–पश्चिम में तन–चार ली की दूरी पर स्थित अजितवंती[32] नदी के पश्चिमी किनारे पर ह्वेनसांग ने सालवन का उल्लेख किया है। इस सालवन में विभिन्न घटनाओं के स्मारक स्वरूप अनेक स्तूप बने हुए थे। इनमें से दो का संबंध बुध के पूर्व जन्म की कथाओं से था। वहाँ पर ईटों से निर्मित एक बड़ा चैत्य था, जिसमें एक मूर्ति रखी थी। इसमें बुद्ध (परिनिवार्ण को प्राप्त) उत्तर की ओर सिर किये हुए लेटे दिखाये गये थे। इस चैत्य के समीप अशोक निर्मित 200 फुट ऊँचा एक भग्न स्तुप था। स्तूप के सामने मौर्यकालीन प्रस्तर स्तम्भ था, जिसपर परिनिर्वाण का वृत्तांत उत्कीर्ण था[33]।

अन्य स्तूतों से सुभद्र के मरण–स्थल से संबद्ध स्तूप का उल्लेख किया जा सकता है जो विहार से पश्चिम की ओर स्थित था। यह ब्राह्मण मतावलम्बी था। सुभद्र ने एक सौ बीस वर्ष की अवस्था में गौतम बुद्ध से दीक्षा ली थी[34]। इन स्तूपों के अतिरिक्त वज्रपाणि यक्ष के गदापतन, देवताओं द्वारा तथागत के शरीर पूजन एवं माया देवी के विलाप आदि घटनाओं से संबद्ध स्थानों पर भी स्तूप निर्मित थे[35]।

नगर के उत्तर में हिरण्यवती (अजितचवादी) नदी के दूसरे तट से 300 पग दूर एक स्थल पर बुद्ध के दाह–संस्कार का उल्लेख है[36]। इस स्थल पर भी एक स्तूप था जिसकी मिट्टी पवित्र मानी जाती थी। स्थल पर निर्मित एक ऐसे स्तूप का भी ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है, जो महाकाव्य द्वारा बुद्ध की पादवंदना से संबद्ध की अस्थियों का बँटवारा आठ नरेशों के बीच हुआ था। उसके सामने एक स्तम्भ था जिस पर उपर्युक्त घटना का वृतांत उत्कीर्ण था[37]।

यद्यपि ह्वेनसांग ने यहाँ के विहारों के भिक्षुओं की संख्या का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उसके वर्णन से हमें तत्कालीन विहारों के और उनमें सन्निहित तत्वों का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

इत्सिंग का यात्रा वृत्तांत

सातवीं शताब्दी के अंत में इत्सिंग नामक एक अन्य चीनी यात्री भी कुशीनगर आया था। उसके समय में कुशीनगर की स्थिति अच्छी थी। संभवतः महाराज हर्ष के सफल संरक्षण में था। इत्सिंग ने लिखा है कि शालवन तथा मुकुट बंध (पन्–द–न) प्रसिद्ध चैतय थे, जहाँ शरद तथा वसंत ऋतु में दूर–दूर से श्रद्धालु आया करते थे। उस समय विहार में रहने वाले भिक्षुओं की संख्या सौ थी। वहाँ के भिक्षुओं के पास पर्याप्त साधन थे, अतः यात्रियों के स्वागत–सत्कार में

उन्हे कठिनाई नही होती थी। एक बार अकस्मात् वहाँ 500 भिक्षुओं का समूह (जत्था) आ पहुँचा जिनका स्थानीय विहार में भोजन आदि से स्वागत–सत्कार किया गया।

इत्सिंग ने समय की गणना के लिए प्रयुक्त एक ऐसे विशिष्ट विधान का उल्लेख किया है जिसका इन विहारों में प्रयोग किया जाता था[38]।

मुख्य स्तूप

इस स्तूप (फलक पर ए) की खुदाई सर्वप्रथम कार्लाइल ने 1876 ई0 में करायी थी। उस समय यह बहुत जीर्ण–शीर्ण दशा में था। इस स्तूप के शिखर तथा खंड भाग पूर्णतः नष्ट हो चुके थे[46]। केवल अधोभाग ही अवशिष्ट था। ह्वेनसांग ने इस सतूप की ऊँचाई 200 फुट बताया है और इसके निर्माण का श्रेय अशोक को दिया है[47]। परन्तु कार्लाइल ने शिखर सहित उसकी ऊँचाई 150 फुट बतायी है। इसकी नींव जिस स्तूप और मंदिर पर निर्मित हुए थे, पृथ्वी की सतह से 2.74 मीटर ऊँचाई पर थी। इस स्तूप में प्रयुक्त ईंटें विभिन्न आकार की थी। कार्लाइल के अनुसार इस स्तूप के नीचे अन्य प्राचीन स्तूपों के ध्वंसावशेष दबे हुए थे।

1910 ई0 में हीरानन्द शास्त्री के निर्देशन में इस स्तूप की खुदाई पुनः आरंभ हुई। ऊपर गुम्बद हो हटाने पर गोलाकार भित्ति से सबसे ऊपर कुछ नक्काशीदार ईंटे तथा जयगुपत नामक राजा का एक तांबे का सिक्का मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि नक्काशीदार ईंटों को अन्य प्राचीन स्मारकों से लिया गया था[48]। खुदाई करने पर 14 फुट (2. 74 मीटर) नीचे ईंटों का एक वृत्ताकार कक्ष मिला[49]। इसकी ऊँचाई और व्यास 0.64 मीटर (2 फुट 1 इंच) था। इसके अंदर ताम्रपत्र द्वारा बंद एक ताम्रघट रखा था। इस ताम्रघट में बालू, लकड़ी के कोयले, कीमती पत्थर, कौड़ियाँ और दो ताम्रनलियाँ मिली है। इसके अतिरिक्त कुमारगुप्त प्रथम के कुछ रजत सिक्के तथा एक छोटी स्वर्ण एवं रजत नली भी मिली है। स्वर्ण नही पर भूरे रंग के कोई पदार्थ तथा किसी अन्य पदार्थ की दो बूँदे रखी हुई थी। मुखाच्छादन के रूप में प्रयुक्त ताम्रपत्र पर संस्कृत भाषा में निदानसूत्र लिखा गया है। परिनिर्वाण चैत्य में हरिबल स्वामी ने इसे स्थापित किया था49। फ्लीट ने प्रतिमा पर अंकित लिपि को 5वीं शताब्दी का माना है[50]। कुमारगुपत प्रथम के सिक्कों की प्राप्ति से यह निश्चित हो जाता है कि उपरी स्तूप की संरचना भी इसी शताब्दी में हुई थी।

इस स्तूप के 10.36 मीटर नीचे खोदन पर 2.82 मीटर ऊँचे स्तूप का एक अवशेष मिला। इसके पश्चिमी पार्श्व में प्रथम शताब्दी में निर्मित बुद्ध की एक ध्यानावस्थित मृणमूर्ति स्थापित की गयी थी[51]। स्तूप के भीतर एक मिट्टी के पात्र में कुछ जला हुआ कोयला रखा था। संभवतः यह कोयला किसी भिक्षु की चिता का था, जिसे इसमें रख दिया था। यह स्तूप अच्छी दशा में था, अतः हीरानन्द शास्त्री ने इस स्तूप को मुख्य स्तूप से बहुत पूर्व का माना है[52]।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस स्तूप का कई बार परिवर्धन एवं जीर्णोद्धार किया गया। यहाँ सर्वप्रथम एक छोटे से स्तूप का निर्माण हुआ और कालान्तर में उसके आकार में निरंतर अभिवृद्धि होती रही। पाँचवी शताब्दी में हरिबल शास्त्री ने इसका जीर्णोद्धार करवाया और परवर्ती काल में भी उसकी आवश्यक मरम्मत होती रही। 75 फुट ऊँचा स्तूप का वर्तमान कलेवर 1927 में भक्तों के किये गये कार्य का सुफल है।

परिर्वाण मंदिर

यह मंदिर (जिसे फलक पर बी से दिखाया गया है) मुख्य स्तूप के पश्चिम में स्थित था। सर्वप्रथम कार्लाइल ने 1876 ई0 में इस मंदिर और परिनिर्वाण प्रतिमा को खोज निकाला था। कार्लाइल को ऊँची दीवारें तो मिली थी, परन्तु छत के अवशेष नहीं मिले थें इसमें केवल गर्भगृह और उसके आगे एक प्रवेश कक्ष था। इस टीले के गर्भगृह में खुदाई करते समय कार्लाइल को एक ऊँचे सिंहासन पर तथागत की 20 फुट (6.1 मीटर) लम्बी परिनिर्वाण मुद्रा की प्रतिमा मिली थी। यह प्रतिमा चित्तीदार बलूआ पत्थर की है। इसमें बुद्ध को पश्चिम की तरफ मुख करके लेटे हुए दिखाया गया। इसका सिर उत्तराभिमुख है, दाहिना हाथ सिर के नीचे और बाँया हाथ जंघे पर स्थित है। पैर एक–दूसरे के

ऊपर है[53]। इस प्रतिमा को ईंटों के बने एक सिंहासन पर स्थापित किया गया था। यह सिंहासन 24 फुट लम्बा तथा 5 फुट 6 इंच चौड़ा था। सिंहासन के ऊपर की पट्टियाँ जड़ी हुई थी। सिंहासन के अग्र भाग में तीन शोक संतप्त मूर्तियाँ है[54]। इसके नीचे पाँचवी शताब्दी का लेख उत्कीर्ण है[55]। इस लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिनिवाण मूर्ति का प्रतिष्ठापक हरिबल[56] नामक व्यक्ति था।

मलबे की सफाई के पश्चात् कार्लाइल को निर्वाण मंदिर का पता चला। मंदिर की दीवार की मोटाई 3.05 मीटर और गर्भगृह की लम्बाई–चौड़ाई 8.35 X 3.66 मीटर थी। प्रवेश कक्ष की लम्बाई 10.92 मीटर तथा चौड़ाई 4.57 मीटर थी। सफाई के समय कार्लाइल को अल्प मात्रा में चौरस ईंटें और टेढ़ी दीवाल के अवशेष मिले थे, मेहराव गुम्बज से युक्त थी। इसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर था। उत्तर और दक्षिण की दीवालों में एक–एक खिड़कियाँ थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मूर्ति की दृष्टि से इस मंदिर का गर्भगृह छोटा है और प्रदक्षिणा के लिए पर्याप्त स्थान नहीं था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि परिनिर्वाण प्रतिमा की स्थापना 5वीं शताब्दी में हुई थी, परन्तु यह मंदिर इतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। मूर्ति पर प्रयुक्त परवर्ती प्लास्टर इस बात का सूचक है कि यह मंदिर कई शताब्दियों तक परिवर्तित होता रहा। उत्तरी और दक्षिणी दीवालों के नीचे मूर्ति से युक्त पूर्ववर्ती मंदिर के अवशेष उस स्थान से मिले है जहाँ से कार्लाइल को परिनिर्वाण मंदिर के अवशेष मिले थे[57]। लेकिन यह कहना कठिन है कि यह वही प्राचीन मंदिर था, जिसमें परिनिर्वाण प्रतिमा सर्वप्रथम स्थापित की गयी थी और जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने किया था[58]। कार्लाइल द्वारा अनवेषित इस परिनिर्वाण मंदिर का निर्माण 11 वीं –12वीं शताब्दी में हुआ होगा जबकि कुशीनगर अवनति की ओर अग्रसर था। कार्लाइल ने इस मूर्ति की मरम्मत और मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया[59]। आधुनिक काल में भी इसका कई बार जीर्णोद्धार होता रहा[60]।

मंदिर के चारो तरफ विहार बने हुए थे जिन्हें अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कई वर्गो में विभाजित किया जा सकता है–

पश्चिमी वर्ग

स्तूप और निव्राण मंदिर के चारों ओर ईंटों से निर्मित कई स्थापत्य है जिनका समय–समय पर एक धार्मिक मठ के रूप में विकास होता रहा। यहाँ से दो मठों (क्यू और क्यू) का पता चला है। यहाँ उत्खनन से बड़ी मात्रा में लिपियुक्त और तिथिपरक वस्तुएँ प्रकाश में आयी है। यहीं से प्राप्त मिट्टी की एक मुहर पर बने दो साल वृक्षों के नीचे बुद्ध की समाधि और दो पंक्तियों में महापरिनिर्वाण भिक्षु संध लिखा हुआ है[61]। दो अन्य मुहरे भी मिली है, जिन पर मैत्रेय की आकृति है, परन्तु लेख वी है। इन लेखों की तिथि चौथी शताब्दी प्रतीत होती है। चांदी का एक सिक्का मिला है, जिसे क्षत्रप नरेश दामसेन का माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ टुटी हुई मृण्मूर्तियाँ और बड़ी मात्रा में मृदभाण्ड भी मिले है। इन समस्त वस्तुओं का निचली सतह से मिलना यह सिद्ध करता है कि ये दोनों मठ चौथी शताब्दी के पहले निर्मित हुए होंगे। उत्खनन से पश्चिम मंदिर के सामने कई भवन प्रकाश में आये है जिनका प्रसार 109.93 मीटर लम्बाई में था। इन्हें फलक में –'डी, एल, एन तथा ओ से दिखाया गया है।

इन भवनों में 45.72 मीटर वर्गाकार घेरे में फैला सबसे बड़ा मठ (डी) था। इस मठ के चारों ओर 3.05 मीटर चौड़ा गलियारा बना था। इसमें भिक्षुओं के निवास के लिए छोटे–छोटे कई कमरे बने थे। कमरों और गलियारों की फर्श कंकरी की बनी थी। मठ की दिवालें बहुत बड़ी और मोटी थी जिससे इस मठ के कई मंजिला होने का अनुमान किया जाता है। उत्खनन में एक कुएँ से 900 ई0 की एक अभिलिखित मुहरें भी मिली है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस भवन का निर्माण 8वी शताब्दी में हो चुका था और इसका विनाश 900 ई0 के आसपास हुआ[62]

। ऐसा लगता है कि इस भवन निमार्ण के एक शताब्दी बाद प्राचीन भवन के स्थान पर एक नये भवन का निर्माण हुआ और परवर्ती भवन के निर्माताओं ने पुराने भवन के पुरावशेषों का भरपूर उपयोग किया।

मुख्य भवन के दखिण एक–दूसरे से संबंधित चार अन्य भवनों के अवशेष प्रकाश में आये है। उल्लेखनीय है कि एक–दूसरे से संबंधित चार अन्य भवनों के अवशेष प्रकाश में आये है। उल्लेखनीय है कि एक–दूसरे से संबंधित होते हुए भी ये सभी भवन योजना और आकार में परस्पर भिन्न है। मंदिर के उत्तर–पूर्व में एक चौकोर विहार (एल) था। इस विहार के बीच में आंगन और उसके चारों ओर 12 कमरे थे। विहार में चौकोर बरामदा भी बना था। पश्चिम में एक ऐसा मठ मिला है जिसके आंगन में एक तालाब था। इन दोनों विहारों की खुदाई से गुप्तकाल (चौथी–पांचवीं शताब्दी)की लिखित मुहरें, धातु, पाषाण पात्र एवं अन्य उपयोगी वस्तुएँ मिली है।

एक अन्य विहार का भी अवशेष मिला है, जिसके फलक पर (एन) से अभिहित किया गया है। विहार का केन्द्रीय भाग आयताकार और उसकी दीवालें नीची थीं। पूर्व में एक समान दूरी पर गड्ढ़े निर्मित थे। ऐसी संभावना है कि इन गड्ढ़ों में लकड़ी के खम्भे रहे होंगे, जिनके सहारे लकड़ी की छत टिकी रही होगी। इन्हें स्तम्भ गर्त कहते हैं। संभवतः इस भवन का उपयोग विचार–विमर्श के निमित्त सभा भवन के रूप में किया जाता था। इस विहार के नीचे अल्प अवशेष विद्यमान थे, परनतु यह स्पष्ट नहीं है कि ये अवशेष मूल विहार की नींव है या अन्य विहार के खंडहर। ऊपरी सतह से कुछ मृदभांड और लोहे का एक चम्मच मिला है[63]।

उपर्युक्त विहार के दक्षिण में 34.53 मीटर वर्गाकार घेरे में विस्तृत एक अन्य विहार (ओ) का अवशेष मिला है। इस विहार के बीच में आंगन और इसके चारों तरफ गलियारेयुक्त 20 कमरे थे। यह विहार आकार में मेजर किटोई द्वारा उत्खनित सारनाथ के विहार से पर्याप्त समानता रखता है[64]। इसकी बाहरी दीवाल की मोटाई 5 फुट तथा आंगन के चारों तरफ के दीवाल की मोटाई 4 फुट 2 इंच है। इस विहार में प्रयुक्त ईंटें की माप 14 इंच X $8\frac{1}{2}$ इंच से 9 X $2\frac{1}{2}$ इंच है।

उत्खनन करने पर इन विहारों में बड़ी मात्रा में मुहरें तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय (400 ई0) का एक सोने का सिक्का मिला है। इसके अतिरिक्त एक कमरे से कुषाण काल (प्रथम शताब्दी ई0) का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। आंगन की खुदाई से मथुरा निर्मित लाल पत्थर की कुछ मूर्तियाँ मिली है। अतः यह निश्चित होता है कि इस वर्ग के सभी विहारों का निर्माण प्रथम शताब्दी में और इनका विनाश 5वीं–6वीं शताब्दी में हुआ[65]।

दक्षिण वर्ग

इस वर्ग के स्मारकों में अधिकांश छोटे–छोटे स्तूप थे जिनकी स्थापना श्रद्धालु भक्तों एवं तीर्थयात्रियों द्वारा की गयी थी। ये स्मारक दक्षिण ओर से एक निश्चित लम्बाई की दीवाल से आवृत थे। स्मारकों के मध्य में दो ऐसे स्तूप थे जिनमें प्रयुक्त ईंटें अनिश्चित आकार की थी और कार्निसेज और अलंकृत स्तम्भ स्तूप के समान थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि इसका निर्माण मुख्य स्तूप के साथ ही हुआ होगा।

इसके उत्तर में एक आयताकार विहार (एफ) था जिसका अधिष्ठाान मुख्य स्तूप के समान था। इसके भीतर ईंट की कब्रनुमा एक ठोस संरचना थी। यह निर्माण पूर्ववर्ती प्रतीत होता है, क्योंकि इसकी नींव एक पंक्ति में नहीं है। पश्चिमाभिमुख इसका प्रवेश द्वारा 1.57 मीटर चौड़ा था। इसके किनारों पर बुद्ध की ध्यानावस्थित मृणमूर्ति स्थापित थी।

पूर्वी वर्ग

पूर्वी वर्ग के अवशेषों में सबसे रोचक तथा महत्वपूर्ण अवशेष था एक चबूतरेनुमा बड़ा स्थापत्य। यह संरचना कच्ची ईंटों की बनी थी तथा मुख्य संरचना के तिरछे थी। इसे फलक पर सी नाम दिया गया है। यह दो चबूतरों के युक्त था। निचला चबूतरा चौकोर और सीढ़ियों से युक्त था। ऊपरी चबूतरा अपेक्षाकृत छोटा था, और उसके चारो

तरफ 3.66 मीटर तक ईंटों का बना एक प्रदक्षिणा पथ था। यह प्रदक्षिणा पथ चारों तरफ नहीं है क्योंकि दोनों चबूतरे एक–दूसरे के समानान्तर नहीं थे। निचले चबूतरे की दीवालें सादी थीं जबकि ऊपरी चबूतरे में अलंकृत साँचे में ढली ईंटों एवं कर्निसेज का प्रयोग किया गया था। यह 7वीं सदी में निर्मित स्तूपों से घिरा हुआ था।

2.54 X 2.52 मीटर परिधि में विस्तृत इस चबूतरे–युक्त भवन के उत्तर–पश्चिम में एक छोटे भवन 'एच' का अवशेष मिला है। इस भवन में प्रयुक्त ईंटें बड़े आकार की है। इनकी माप 48.26 X 7.62 सेमी और 46.20 X 25-4 x6.98 सेमी थी। इस प्रकार की ईंटें मौर्यकाल में प्रयुक्त होती थीं। अतः यह भवन मौर्यकाल का प्रतीत होता है। यहाँ से कुषाणों के ताँबे के सिक्के मिले हैं। इन कुषाण सिक्कों में 8 कनिष्क के और 4 कैडफिसेन द्वितीय के है। इसके आसपास परनतु नीचे दबे पड़े अनेक छोटे स्तूपों के भवन से पूर्व के होने का अनुमान किया जाता है।

उत्तरी वर्ग

इस वर्ग के बने भवन मौर्यकालीन थे, जो समय–समय पर श्रद्धालु तीर्थयात्रियों द्वारा बनवाये गये थे। निचली सतर से दो चौकोर मकानों के अवशेष मिले। पश्चिम की ओर दीवालों में प्रयुक्त ईंटें मौर्यकालीन प्रतीत होती है। सतह से नीचे खोदने पर एक पकी मिट्टी की पहली शताब्दी ई0पू0 की नारी प्रतिमा और 5वीं शताब्दी का एक खंडित प्रस्तर अभिलेख मिला है। इनके उत्तर में दो अन्य भवनों के अवशेष मिले हैं जिन्हें क्रमशः 'आई' तथा 'जे' कहा जाता है। 'आई' भवन आयताकार है जो 103 फुट लम्बा और 97 फुट चौड़ा है। इसमें चारों और कमरे बने थे और बीच में 67′7′′X 66′6′′ नाप का खाली स्थान था जिसमें 44 फुट चौकोर और 2 फुट गहरा जलकुण्ड बना था। यह जलकुण्ड 2 फुट चौड़ी दीवाल के आवृत्त था, जिसके ऊपरी भाग से बड़ी आकार की ईंटें मिली हैं जिसका माप 16 इंच X 10 इंच X 2 1/2 इंच थी[66]। ऐसा अीाास होता है कि इस दीवाल के सामने लकड़ी के खम्भे के सहारे बरामदा था। यह बरामदा पूर्व की ओर 9 फुट 5 इंच चौड़ा था। असकी फर्श कंक्रीट की थी जो भूमि से 3 फुट नीचे थी।

इस भवन का प्रवेश कक्ष आयताकार था। यह कक्ष ईंटों से निर्मित एक चबूतरे से युक्त था। ये चबूतरे लम्बाई X चौड़ाई में क्रमशः 4 फुट 3 इंच X 5 फुट 6इंच विस्तृत थे। इसकी ऊँचाई 9 इंच थी। इसी प्रकार के एक स्थापत्य का अवशेष सारनाथ में भी मिला था[67]।

इस भवन से सटा हुआ एक अन्य भवन (जे) भी था पर उसकी खुदाई नहीं हो पायी है लेकिन एक अंश की खुदाई से यह निश्चित हो गया है कि यह एक कमरे से युक्त विहार था और इसमें बीच में 30 फुट चौकोर आंगन था[68]। इन मठों के बौद्ध विहार होने के संदर्भ में संदेह है। संभवतः ये मठ तीर्थयात्रियों के आवास रहे होंगे। इस भवन से कुछ लेखयुक्त मुहरें मिली हैं जो 'डी' मठ से प्राप्त मुहरों के समान हैं। इसमें से एक मुहर 900 ई0 की है। इससे इस मठ के परवर्ती होने की सूचना मिलती है। संभवतः इस मठ का निर्माण 10वीं–11वीं शताब्दी में कभी हुआ था।

संदर्भ सूची

1. दिव्यावदान, पृ0 152, 153, 194
2. तथैव, पृ0 108
3. द्रष्टव्य, दीघ्निकाय, भाग–2, पृ0 146–152
4. दीघ्निकाय, भाग–2, पृ0 170–171
5. द्रष्टव्य, भिक्षु धर्मरक्षित, कुशीनगर का इतिहास, पृ0 32
6. सुत्तनिपात, 5,10,12
7. विनयपिटक, भाग–2, पृ0 284

8. सुमंगलविलासिनी, भाग–2, पृ0 573
9. भगवान बुद्ध का पूर्व जन्म का यह एक नाम था।
10. द्रष्टव्य–दीघ्निकाय, भाग–2, पृ0 147
11. दीघ्निकाय, भाग–2, पृ0 152
12. सुमंगलविलासिनी, भाग–2, पृ0 573
13. भरत सिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ0 318
14. सुमंगलविलासिनी, भाग–2, पृ0 609, दीघ्निकाय, पृ0 44
15. जातक, खंड–5, पृ0 290
16. थामस वाटर्स, भाग–2, पृ0 46
17. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृ0 222
18. ऐंश्येंट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ0 364
19. दीघ्निकाय, भाग–2, पृ0 198
20. यह चैत्य मुकुट बंधन इसिलिए कहलाला था कि यहाँ मल्ल राजाओं का अभिषेक किया जाता था और उनके सिर पर मुकुट बाँधा जाता था।
21. दीघ्निकाय, भाग–2